प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के स्रोत

डॉ. विश्वनाथ वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग

हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)

drvn.verma@gmail.com

Website : www.worldwidehistory.com

प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के स्रोत

भारतवर्ष संसार के प्राचीनतम् एवं महानतम् देशों में अग्रगण्य है। ऐतिहासिक स्रोतों की दृष्टि से इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया है। जिस काल के लिए कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिसमें मानव का जीवन अपेक्षाकृत असभ्य था, 'प्रागैतिहासिक काल' कहलाता है। उस काल को इतिहासकारों ने 'ऐतिहासिक काल' कहा है जिसके लिए लिखित साधन उपलब्ध हैं और जिसमें मानव सभ्य बन गया था। प्राचीन भारत में एक ऐसा भी काल था जिसके लिए लेखनकला के प्रमाण तो हैं, किंतु या तो वे अपुष्ट हैं या फिर इनकी गूढ़ लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। इस काल को 'आद्य इतिहास' कहा गया है। हड़प्पा की संस्कृति और वैदिककालीन संस्कृति की गणना 'आद्य इतिहास' में ही की जाती है। इस प्रकार हड़प्पा संस्कृति के पूर्व का भारत का इतिहास 'प्रागैतिहास' और लगभग 600 ई. पू. के बाद का इतिहास 'इतिहास' कहलाता है।

इतिहासकार एक वैज्ञानिक की तरह उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन एवं समीक्षा कर अतीत का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए शुद्ध ऐतिहासिक सामग्री अन्य देशों की तुलना में बहुत कम उपलब्ध है। भारत में यूनान के हेरोडोटस या रोम के लिवी जैसे इतिहास-लेखक नहीं हुए, इसलिए पाश्चात्य मनीषियों ने यह प्रवाद फैलाया कि भारतवर्ष में वहाँ के जन-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करनेवाले इतिहास का पूर्णतया अभाव है क्योंकि प्राचीन भारतीयों की इतिहास की संकल्पना ठीक नहीं थी। नि:संदेह, प्राचीन भारतीयों की इतिहास की संकल्पना आधुनिक इतिहासकारों की इतिहास से भिन्न थी। आधुनिक इतिहासकार जहाँ घटनाओं में कार्य-कारण संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है, वहीं भारतीय इतिहासकारों ने केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे जन-साधारण को कुछ शिक्षा मिल सके। महाभारत में भारतीयों की इतिहास-विषयक संकल्पना पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि 'ऐसी प्राचीन रूचिकर कथा जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा मिल सके, 'इतिहास' कहलाती है।' यही कारण है कि प्राचीन भारत का इतिहास राजनीतिक कम और सांस्कृतिक अधिक है। यद्यपि भारतीय समाज के निर्माण में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, किंतु अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारण भी थे जिन्होंने भारत में अनेक आंदोलनों, संस्थाओं और विचारधाराओं को जन्म दिया। प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

1. साहित्यिक स्रोत
2. पुरातात्त्विक स्रोत

1. साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोत के अंतर्गत साहित्यिक ग्रंथों से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों की समीक्षा की जाती है। ब्राह्मण और बौद्ध-जैन ग्रंथों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक बुद्धि पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है कि 'योग्य और सराहनीय इतिहासकार वही है जिसका अतीतकालीन घटनाओं का वर्णन न्यायाधीश के समान आवेश, पूर्वाग्रह व पक्षपात से मुक्त है।' चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि भारत के प्रत्येक प्रदेश में राजकीय अधिकारी प्रमुख घटनाओं को

लिखते थे। भारत के प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों से प्राचीन भारतीय इतिहास के बारे में पर्याप्त ज्ञान होता है। इन साहित्यिक स्रोतों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) धार्मिक साहित्य

(ख) धर्मेतर (लौकिक) साहित्य

(ग) विदेशी यात्रियों के विवरण

(क) धार्मिक साहित्य

धार्मिक साहित्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– 1. ब्राह्मण साहित्य, 2. बौद्ध साहित्य और 3. जैन साहित्य।

ब्राह्मण साहित्य

ब्राह्मण साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के प्रमुख स्रोत हैं। यद्यपि भारत का प्राचीनतम् साहित्य प्रधानत: धर्म–संबंधी ही है, फिर भी ऐसे अनेक ब्राह्मण ग्रंथ हैं जिनके द्वारा प्राचीन भारत की सभ्यता तथा संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मण साहित्य के अंतर्गत वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाकाव्य, पुराण, स्मृतियाँ आदि आती हैं। वे निम्नलिखित हैं–

वेद

ब्राह्मण साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन व महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ऋग्वेद है। इस ग्रंथ से प्राचीन आर्यों के धार्मिक सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर अधिक और राजनीतिक जीवन पर अपेक्षाकृत कम प्रकाश पड़ता है। उत्तरवैदिक कालीन (लगभग 1000–600 ई.पू.) आर्यों के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद संहिताओं का उपयोग किया जाता है। यजुर्वेद और सामवेद के अधिकतर मंत्रा ऋग्वेद से ही लिये गये हैं, इसलिए अथर्ववेद अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में आर्य–अनार्य संस्कृति के सम्मिश्रण का संकेत मिलता है। वैदिक परंपरा वेदों को अपौरुषेय अर्थात् दैवकृत मानती है जिसके संकलनकर्ता कृष्ण द्वैपायन माने जाते हैं। वेदों से आर्यों के प्रसार, पारस्परिक युद्ध, अनार्यों, दासों और दस्युओं से उनके निरंतर संघर्ष तथा उनके सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक संगठन की जानकारी प्राप्त होती है।

ब्राह्मण ग्रंथ

वैदिक मंत्रों तथा संहिताओं की गद्य–टीकाओं को ब्राह्मण कहा जाता है। सभी वेदों के अलग–अलग ब्राह्मण ग्रंथ हैं जिनकी रचना मूलत: यज्ञों एवं कर्मकांडों के विधान तथा उनकी क्रियाओं को भली–भाँति समझने के लिए की गई थी। इन ब्राह्मण ग्रंथों से उत्तर वैदिककालीन आर्यों के विस्तार और उनके धार्मिक विश्वासों का ज्ञान होता है। प्राचीन ब्राह्मणों में ऐतरेय, शतपथ, पंचविश, तैत्तरीय आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण से राज्याभिषेक तथा अभिषिक्त नृपतियों के नामों की जानकारी मिलती है तो शतपथ ब्राह्मण गांधार, शाल्य, केकय, कुरु, पांचाल, कोशल तथा विदेह के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। राजा परीक्षित की कथा ब्राह्मणों द्वारा ही अधिक स्पष्ट हो सकी है।

आरण्यक

अरण्यों (जंगलों) में निवास करने वाले संन्यासियों के मार्गदर्शन के लिए लिखे गये आरयण्कों में दार्शनिक एवं रहस्यात्मक विषयों यथा– आत्मा, मृत्यु, जीवन आदि का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद को छोड़कर अन्य तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद और समावेद) के आरण्यक हैं। आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक, शांखयन आरण्यक, बृहदारण्यक, मैत्रायणी उपनिषद् आरण्यक तथा तवलकार आरण्यक

(जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण) प्रमुख हैं। ऐतरेय तथा शांखयन ऋग्वेद से, बृहदारण्यक शुक्ल यजुर्वेद से, मैत्रायणी उपनिषद् आरण्यक कृष्ण यजुर्वेद से तथा तवलकार आरण्यक सामवेद से संबद्ध हैं। यद्यपि इन आरण्यक ग्रंथों में विशेषत: प्राण-विद्या की महिमा का प्रतिपादन मिलता है, किंतु इनमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी हैं, जैसे- तैत्तिरीय आरण्यक में कुरु, पंचाल, काशी, विदेह आदि महाजनपदों का उल्लेख मिलता है।

उपनिषद्

उपनिषद् भी उत्तर वैदिककालीन रचनाएँ हैं जिनसे आर्यों के प्राचीनतम् दार्शनिक विचारों का ज्ञान होता है। उपनिषदों की कुल संख्या 108 बताई जाती है, किंतु ईश, केन, कठ, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, कौषीतकी, मुंडक, प्रश्न, मैत्रायणी आदि प्रमुख उपनिषद् हैं। उपनिषद् गद्य और पद्य दोनों में हैं, जिसमें प्रश्न, मांडूक्य, केन, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक और कौषीतकि उपनिषद् गद्य में हैं तथा ईश, कठ, केन और श्वेताश्वतर उपनिषद् पद्य में हैं। इन ग्रंथों से बिंबिसार के पूर्व के भारत की अवस्था का ज्ञान होता है। उपनिषदों की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा यह है कि जीवन का उद्देश्य मनुष्य की आत्मा का विश्व की आत्मा से मिलना है। उसी से मनुष्य को वास्तविक सुख मिल सकता है। इसको पराविद्या या अध्यात्म-विद्या कहा गया है। इन उपनिषदों से पता चलता है कि आर्यों का दर्शन विश्व के अन्य देशों के दर्शन से सर्वोत्तम तथा अधिक आगे था। भारत का प्रसिद्ध आदर्श वाक्य 'सत्यमेव जयते' मुंडकोपनिषद् से ही लिया गया है।

वेदांग

वैदिक काल के अंत में वेदों के अर्थ को अच्छी तरह समझने के लिए छ: वेदांगों की रचना की गई। वेदों के छ: अंग हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदशास्त्र और ज्योतिष। वैदिक स्वरों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए शिक्षाशास्त्र का निर्माण हुआ। जिन सूत्रों में विधि और नियमों का प्रतिपादन किया गया है, वे कल्पसूत्र कहलाते हैं। कल्पसूत्रों के चार भाग हैं- श्रौतसूत्र, गृहसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र। श्रौतसूत्रों में यज्ञ-संबंधी नियमों का उल्लेख है। गृहसूत्रों में मानव के लौकिक और पारलौकिक कर्त्तव्यों का विवेचन है। धर्मसूत्रों में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कर्त्तव्यों का उल्लेख है। यज्ञ, हवन-कुंड, वेदी आदि के निर्माण का उल्लेख शुल्वसूत्र में किया गया है। व्याकरण-ग्रंथों में पाणिनि की अष्टाध्यायी महत्त्वपूर्ण है। ई.पू. की दूसरी शताब्दी में पतंजलि ने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा जिससे पुष्यमित्र शुंग के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। यास्क ने निरुक्त (ई.पू. पाँचवीं शताब्दी) की रचना की, जिसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति का विवेचन है। वेदों में अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है, जिनसे पता चलता है कि वैदिक काल में ही छंदशास्त्रा का विकास हो चुका था। ज्योतिषशास्त्र की भी प्राचीन काल में बड़ी उन्नति हुई।

स्मृतियाँ

ब्राह्मण ग्रंथों में स्मृतियों का भी ऐतिहासिक महत्त्व है जिनकी रचना सूत्र साहित्य के बाद हुई। इन स्मृतियों से मानव के संपूर्ण जीवन से संबंधित विधि-निषेधों की जानकारी मिलती है। संभवत: मनुस्मृति (लगभग 200 ई.पू. से 100 ई. के मध्य) एवं याज्ञवल्क्य स्मृति (100 ई. से 300 ई.) सबसे प्राचीन हैं। मेधातिथि, मारूचि, कुल्लूक भट्ट, गोविंदराज आदि टीकाकारों ने मनुस्मृति पर, जबकि विश्वरूप, अपरार्क, विज्ञानेश्वर आदि ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य लिखे हैं। नारद (300 ई. से 400 ई.) और पराशर (300 ई. से 500 ई.) की स्मृतियों से गुप्तकालीन सामाजिक व धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। बृहस्पति (300 ई. से 500 ई.) और कात्यायन (400 ई. से 600 ई.) की स्मृतियाँ भी गुप्तकालीन

रचनाएँ मानी जाती हैं। इसके अलावा गौतम, संवर्त, हरीत, अंगिरा आदि अन्य महत्त्वपूर्ण स्मृतिकार थे, जिनका समय संभवत: 100 ई. से लेकर 600 ई. तक था।

महाकाव्य

वैदिक साहित्य के उत्तर में रामायण और महाभारत नामक दो महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। यद्यपि इन दोनों महाकाव्यों के रचनाकाल के विषय में विवाद है, फिर भी कुछ उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इन महाकाव्यों का रचनाकाल चौथी शती ई.पू. से चौथी शती ई. के मध्य माना जा सकता है। रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि द्वारा पहली एवं दूसरी शताब्दी ई. के दौरान संस्कृत भाषा में की गई। रामायण में मूलत: 6,000 श्लोक थे, जो कालांतर में 12,000 हुए और फिर 24,000। इसे चतुर्विंशति सहस्त्री संहिता भी कहा गया है। रामायण में वर्णित व्यवसायों और भोजन से लगता है कि इस ग्रंथ में दो विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों पर रहने वाले दो प्रमुख मानवीय वर्गों का वर्णन है। इससे उस समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का ज्ञान होता है। रामकथा पर आधारित ग्रंथों का अनुवाद सर्वप्रथम भारत से बाहर चीन में किया गया।

महाभारत महाकाव्य रामायण से बृहद् है। मूल महाभारत का प्रणयनकर्त्ता वेदव्यास को बताया जाता है। इसका रचनाकाल ई.पू. चौथी शताब्दी से चौथी शताब्दी ई. माना जाता है। महाभारत में मूलत: 8,800 श्लोक थे और इसका नाम 'जयसंहिता' था। बाद में श्लोकों की संख्या 24,000 होने के पश्चात् यह वैदिक जन 'भरत' के वंशजों की कथा होने के कारण 'भारत' कहलाया। कालांतर में गुप्तकाल में श्लोकों की संख्या बढ़कर एक लाख होने पर यह शतसहस्री संहिता या महाभारत कहलाया। महाभारत का प्रारंभिक उल्लेख आश्वलायन गृहसूत्र में मिलता है। इन महाकाव्यों से उत्तरवैदिक काल में आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का ज्ञान होता है।

पुराण

प्राचीन भारत के इतिहास-निर्माण में पुराणों की उपयोगिता असंदिग्ध है। प्राचीन आख्यानों से युक्त ग्रंथ को 'पुराण' कहते हैं। इनकी रचना का श्रेय 'सूत' लोमहर्षण अथवा उनके पुत्र उग्रश्रवस या उग्रश्रवा को दिया जाता है। पुराणों की संख्या अठारह बताई गई है जिनमें मार्कण्डेय, ब्रह्मांड, वायु, विष्णु, भागवत और मत्स्य संभवत: प्राचीन माने जाते हैं, शेष बाद की रचनाएँ हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में पुराणों के पाँच लक्षण बताये गये हैं- सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित। सर्ग बीज या आदिसृष्टि है, प्रतिसर्ग प्रलय के बाद की पुनर्सृष्टि को कहते हैं, वंश में देवताओं या ऋषियों के वंश-वृक्षों का वर्णन है, मन्वन्तर में कल्प के महायुगों का वर्णन है। वंशानुचरित पुराणों के वे अंग हैं जिनमें राजवंशों की तालिकाएँ दी गई हैं और राजनीतिक अवस्थाओं, कथाओं और घटनाओं का वर्णन है। किंतु वंशानुचरित केवल भविष्य, मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्मांड तथा भागवत पुराणों में ही प्राप्त होता है। गरुड़-पुराण में पौरव, इक्ष्वाकु और बार्हद्रथ राजवंशों की तालिका मिलती है, किंतु इनकी तिथि अनिश्चित है।

पुराणों की भविष्यवाणी शैली में कलियुग के नृपतियों की तालिकाओं के साथ शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, कण्व, आंध्र तथा गुप्तवंशों की वंशावलियाँ भी प्राप्त होती हैं। मौर्य वंश के संबंध में विष्णु पुराण में अधिक उल्लेख मिलते हैं, ठीक इसी प्रकार मत्स्य पुराण में आंध्र वंश का उल्लेख मिलता है। वायु पुराण से गुप्त सम्राटों की शासन-प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है। इन पुराणों में शूद्रों और म्लेच्छों की वंशावली भी दी गई है। प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास लिखने के लिए पुराण बहुत उपयोगी हैं।

पुराण अपने वर्तमान रूप में संभवत: ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी में लिखे गये।

इस प्रकार ब्राह्मण साहित्य से प्राचीन भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, किंतु राजनीतिक इतिहास की अपेक्षित जानकारी नहीं मिल पाती है।

बौद्ध साहित्य

भारतीय इतिहास के साधन के रूप में बौद्ध साहित्य का विशेष महत्व है। सबसे प्राचीन बौद्ध साहित्य त्रिपिटक हैं। 'पिटक' का शाब्दिक अर्थ 'टोकरी' है। त्रिपिटक तीन हैं- सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। इन तीनों पिटकों का संकलन महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरांत आयोजित विभिन्न बौद्ध संगीतियों में किया गया। सुत्तपिटक में बद्धदेव के धार्मिक विचारों और वचनों का संग्रह है। विनयपिटक में बौद्ध संघ, भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिए आचरणीय नियमों का उल्लेख है और अभिधम्मपिटक में बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धांत हैं। त्रिपिटक से ईसा से पूर्व की शताब्दियों में भारत के सामाजिक व धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। दीर्घनिकाय में बुद्ध के जीवन से संबद्ध एवं उनके संपर्क में आये व्यक्तियों के विवरण हैं। संयुक्तनिकाय में छठी शताब्दी पूर्व के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन की जानकारी मिलती है। अंगुत्तरनिकाय में सोलह महानपदों की सूची मिलती है। खुद्दकनिकाय लघुग्रंथों का संग्रह है जो छठी शताब्दी ई.पू. से लेकर मौर्यकाल तक का इतिहास प्रस्तुत करता है।

जातक कथाएँ

बौद्ध ग्रंथों में जातक कथाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है जिनकी संख्या 549 है। जातकों में भगवान् बुद्ध के जन्म के पूर्व की काल्पनिक कथाएँ हैं। भरहुत और साँची के स्तूप की वेष्टनी पर उत्कीर्ण दृश्यों से ज्ञात होता है कि जातकों की रचना ई.पू. पहली शताब्दी में आरंभ हो चुकी थी। इन जातकों का महत्त्व केवल इसीलिए नहीं है कि उनका साहित्य और कला श्रेष्ठ है, प्रत्युत् तीसरी शताब्दी ई.पू. की सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से भी उनका वैसा ही ऊँचा मान है।

अन्य बौद्ध ग्रंथ

लंका के इतिवृत्त महावंस और दीपवंस भी भारत के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। महावंस, दीपवंस व महाबोधिवंस तथा महावस्तु मौर्यकाल के इतिहास की जानकारी देते हैं। दीपवंस की रचना चौथी और महावंस की पाँचवी शताब्दी ई. में हुई। मिलिंदपन्हो में यूनानी शासक मिनेंडर और बौद्ध मिक्षु नागसेन का वार्तालाप है। इसमें ईसा की पहली दो शताब्दियों के उत्तर-पश्चिमी भारत के जीवन की झलक मिलती है। दिव्यावदान में अनेक राजाओं की कथाएँ हैं जिनके अनेक अंश चौथी शताब्दी ई. तक जोड़े जाते रहे हैं। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में बौद्ध दृष्टिकोण से गुप्त राजाओं का वर्णन है। महायान से संबद्ध ललितविस्तर में बुद्ध की ऐहिक लीलाओं का वर्णन है। पालि की 'निदान कथा' बोधिसत्त्वों का वर्णन करती है। 'विनय' के अंतर्गत पातिमोक्ख, महावग्ग, चुग्लवग्ग, सुत विभंग एवं परिवार में भिक्खु-भिक्खुनियों के नियमों का उल्लेख है। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य थेरीगाथा से प्राचीन भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की जानकारी तो मिलती ही है, छठी शताब्दी ई.पू. की राजनीतिक दशा का भी ज्ञान होता है। इसके अलावा तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ द्वारा रचित बौद्ध ग्रंथों- कंग्यूर और तंग्यूर का भी विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है।

जैन साहित्य

प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जैन साहित्य भी बौद्ध साहित्य की ही तरह महत्त्वपूर्ण हैं। उपलब्ध जैन साहित्य प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में हैं। जैन आगमों में सबसे महत्त्वपूर्ण बारह

अंग हैं। जैन ग्रंथ आचारांग सूत्र में जैन भिक्षुओं के आचार-नियमों का उल्लेख है। भगवतीसूत्र से महावीर के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। नायाधम्मकहा में महावीर की शिक्षाओं का संग्रह है। उवासगदसाओ में उपासकों के जीवन-संबंधी नियम दिये गये हैं। अंतगडदसाओ और अणुतरोववाइद्वसाओ में प्रसिद्ध भिक्षुओं की जीवनकथाएँ हैं। वियागसुयमसुत में कर्म-फल का विवेचन है। इन आगमों के उपांग भी हैं। इन पर अनेक भाष्य लिखे गये जो निर्युक्ति, चूर्णि व टीका कहलाते हैं।

जैन आगम ग्रंथों को वर्तमान स्वरूप संभवत: 526 ई. में वल्लभी में प्राप्त हुआ। भगवतीसूत्र में सोलह महाजनपदों का उल्लेख है। भद्रबाहु चरित्र से जैनाचार्य भद्रबाहु के साथ-साथ चंद्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की कुछ सूचनाएँ मिलती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से आवश्यकसूत्र, कल्पसूत्र, उत्तराध्ययंसूत्र, वसुदेव हिंडी, बृहत्कल्पसूत्र भाष्य, आवश्यकचूर्णि, कालिका पुराण, कथाकोश आदि महत्त्वपूर्ण जैन ग्रंथ हैं। किंतु हेमचंद्रकृत परिशिष्टपर्वन् विशेष महत्त्वपूर्ण है जो बारहवीं शताब्दी ई. की रचना है।

पूर्वमध्यकाल (लगभग 600 ई. से 1200 ई.) में अनेक जैन कथाकोशों और पुराणों की रचना हुई, जैसे हरिभद्र सूरि (705 ई. से 775 ई.) ने समरादित्य कथा, धूर्ताख्यान और कथाकोश, उद्योतन सूरि (778 ई.) ने कुवलयमाला, सिद्धर्षि सूरि (605 ई.) ने उपमितिभव प्रपंच कथा, जिनेश्वर सूरि ने कथाकोश प्रकरण और नवीं शताब्दी ई. में जिनसेन ने आदि पुराण और गुणभद्र ने उत्तर पुराण की रचना की। इन जैन ग्रंथों से तत्कालीन भारतीय सामाजिक और धार्मिक दशा पर प्रकाश पड़ता है।

(ख) धर्मेतर (लौकिक साहित्य)

धार्मिक साहित्य का उद्देश्य मुख्यतया अपने धर्म के सिद्धांतों का उपदेश देना था, इसलिए उनसे राजनीतिक गतिविधियों पर कम प्रकाश पड़ता है। राजनैतिक इतिहास-संबंधी जानकारी की दृष्टि से धर्मेतर साहित्य अधिक उपयोगी हैं। धर्मेतर साहित्य में पाणिनी को 'अष्टाध्यायी' यद्यपि एक व्याकरण-ग्रंथ है, फिर भी इससे मौर्यपूर्व तथा मौर्यकालीन राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक अवस्था पर कुछ प्रकाश पड़ता है। विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस', सोमदेव के 'कथासरित्सागर' और क्षेमेंद्र के 'बृहत्कथामंजरी' से मौर्यकालीन कुछ घटनाओं की सूचना मिलती है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के कुछ अध्यायों से मौर्य-शासन के कर्त्तव्य, शासन-व्यवस्था, न्याय आदि अनेक विषयों के संबंध में ज्ञान होता है। कामंदक के 'नीतिसार' (लगभग 400 ई. से 600 ई.) से गुप्तकालीन राज्यतंत्रा पर कुछ प्रकाश पड़ता है। सोमदेव सूरि को 'नीतिवाक्यामृत' (दसवीं शताब्दी ई. के अंत) अर्थशास्त्र की ही कोटि का ग्रंथ है।

पतंजलि को 'महाभाष्य' और कालीदासकृत 'मालविकाग्निमित्र' शुंगकालीन इतिहास के प्रमुख स्रोत हैं। मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र तथा विदर्भराज की राजकुमारी मालविका की प्रेमकथा का उल्लेख किया है। ज्योतिष ग्रंथ 'गार्गी संहिता' में यवनों के आक्रमण का उल्लेख है। कालीदास के 'रघुवंश' में संभवत: समुद्रगुप्त के विजय-अभियानों का वर्णन है। सोमदेव के 'कथासरित्सागर' और क्षेमेंद्र के 'बृहत्कथामंजरी' में राजा विक्रमादित्य की कुछ परंपराओं का उल्लेख है। शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक और दंडी के 'दशकुमार चरित' में भी तत्कालीन समाज का चित्रण मिलता है।

गुप्तोत्तरकाल का इतिहास जानने के प्रमुख साधन राजकवियों द्वारा लिखित अपने संरक्षकों के जीवनचरित और स्थानीय इतिवृत्त हैं। जीवनचरितों में सबसे प्रसिद्ध बाणभट्टकृत 'हर्षचरित' में हर्ष की उपलब्धियों का वर्णन है। वाक्पतिराज के 'गौडवहो' में कन्नौज नरेश यशोवर्मा की, बिल्हण के 'विक्रमांकदेवचरित' में परवर्ती चालुक्य नरेश विक्रमादित्य की और सन्ध्याकर नंदी के 'रामचरित' में बंगाल शासक रामपाल की उपलब्धियों का वर्णन है। इसी प्रकार जयसिंह ने 'कुमारपाल चरित' में और हेमचंद्र ने 'द्वयाश्रय काव्य' में गुजरात के शासक कुमारपाल का, परिमल गुप्त (पद्मगुप्त) ने 'नवसाहसांक

चरित' में परमार वंश का और जयानक ने 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियों का वर्णन किया है। चंद्रवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' से चहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। इन जीवनचरितों में तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का पर्याप्त ज्ञान तो होता है, किंतु इन ग्रंथों में अतिशयोक्ति के कारण इन्हें शुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं माना जा सकता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' एकमात्र विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसमें कल्हण ने कथावाहिक रूप में प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों, राजाओं का प्रशस्तियों आदि उपलब्ध स्रातों के आधार पर कश्मीर कोऐतिहासिक वृतांत प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ का रचनाकाल 1148-50 ई. माना जा सकता है। इस प्रसिद्ध ग्रंथ में कश्मीर के नरेशों से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों का निष्पक्ष विवरण देने का प्रयास किया गया है। इसमें क्रमबद्धता का पूरी तरह निर्वाह किया गया है, किंतु सातवीं शताब्दी ई. के पूर्व के इतिहास से संबद्ध विवरण पूर्णतया विश्वसनीय नहीं हैं।

सुदूर दक्षिण भारत के जन-जीवन पर ईसा की पहली दो शताब्दियों में लिखे गये संगम साहित्य से स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। दक्षिण भारत में भी राजकवियों ने अपने संरक्षकों की उपलब्धियों का वर्णन करने के लिये कुछ जीवनचरित लिखे। ऐसे ग्रंथों में 'नंदिवकलाम्बकम्', ओट्टक्तूतन को 'कुलोत्तुंगज-पिललैत्त मिल', जय गोंडार को 'कलिंगत्तुंधरणि', 'राज-राज-शौलन-उला' और 'चोलवंश चरितम्' प्रमुख हैं।

गुजरात में भी अनेक इतिवृत्त लिखे गये जिनमें 'रासमाला', सोमेश्वरकृत 'कीर्ति कौमुदी', अरिसिंह को 'सुकृत संकीर्तन', मेरुतुंग को 'प्रबंध चिंतामणि', राजशेखर को 'प्रबंधकोश', जयसिंह के 'हमीर मद-मर्दन' और वस्तुपाल एवं तेजपाल प्रशस्ति, उदयप्रभु की 'सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी' और बालचंद्र की 'बसंत विलास' अधिक प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार सिंधु में भी इतिवृत्त मिलते हैं, जिनके आधार पर तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में अरबी भाषा में सिंधु का इतिहास लिखा गया। इसका फारसी अनुवाद 'चचनामा' उपलब्ध है।

(ग) विदेशी यात्रियों के विवरण

भारत पर प्राचीन समय से ही विदेशी आक्रमण होते रहे हैं। इन विदेशी आक्रमणों के कारण भारत की राजनीति और इतिहास में समय-समय पर महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भारत की धरती पर अनेक विदेशी यात्रियों ने अपना पाँव रखा है। इनमें से कुछ यात्री आक्रमणकारी सेना के साथ भारत में आये तो कुछ धार्मिक कारणों से। इन विदेशी यात्रियों के विवरणों से भारतीय इतिहास की अमूल्य जानकारी प्राप्त होती है। कई विदेशी यात्रियों एवं लेखकों ने स्वयं भारत की यात्रा करके या लोगों से सुनकर भारतीय संस्कृति से संबंधित ग्रंथों का प्रणयन किया है। यद्यपि ये ग्रंथ पूर्णतया प्रमाणिक नहीं हैं, फिर भी इन ग्रंथों से भारतीय इतिहास-निर्माण में पर्याप्त सहायता मिलती है। विदेशी यात्रियों एवं लेखकों के विवरण से भारतीय इतिहास की जो जानकारी मिलती है, उसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है- 1. यूनानी-रोमन लेखक, 2. चीनी लेखक और 3. अरबी लेखक।

यूनानी-रोमन लेखक

यूनानी-रोमन लेखकों के विवरण सिकंदर के पूर्व, उसके समकालीन तथा उसके पश्चात् की परिस्थितियों से संबंधित हैं। इसलिए इनको तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है- सिकंदर के पूर्व के यूनानी लेखक, सिकंदर के समकालीन यूनानी लेखक, सिकंदर के बाद के लेखक।

स्काइलेक्स पहला यूनानी सैनिक था जिसने सिंधु नदी का पता लगाने के लिए अपने स्वामी डेरियस प्रथम के आदेश से सर्वप्रथम भारत की भूमि पर कदम रखा था। इसके विवरण से पता चलता है कि भारतीय समाज में उच्चकुलीन जनों का काफी सम्मान था। हेकेटियस दूसरा यूनानी लेखक था जिसने

भारत और विदेशों के बीच कायम हुए राजनीतिक संबंधों की चर्चा की है। ईरानी सम्राट जेरेक्सस के वैद्य टेसियस ने सिकंदर के पूर्व के भारतीय समाज के संगठन, रीति-रिवाज, रहन-सहन इत्यादि का वर्णन किया है। किंतु इसके विवरण अधिकांशत: कल्पना-प्रधान और असत्य हैं। हेरोडोटस, जिसे 'इतिहास का जनक' कहा जाता है, ने पाँचवीं शताब्दी ई.पू. में 'हिस्टोरिका' नामक पुस्तक की रचना की थी, जिसमें भारत और फारस के संबंधों का वर्णन है।

भारत पर आक्रमण के समय सिकंदर के साथ आनेवाले लेखकों ने भारत के संबंध में अनेक ग्रंथों की रचना की। इनमें नियार्कस, आनेसिक्रिटस, अरिस्टोबुलस, निआर्कस, चारस, यूमेनीस आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने तत्कालीन भारतीय इतिहास का अपेक्षाकृत प्रमाणिक विवरण दिया है।

सिकंदर के बाद के यात्रियों और लेखकों में मेगस्थनीज, प्लिनी, टाल्मी, डायमेकस, डायोडोरस, प्लूटार्क, एरियन, कर्टियस, जस्टिन, स्ट्रैबो आदि उल्लेखनीय हैं। मेगस्थनीज यूनानी शासक सेल्यूकस की ओर से राजदूत के रूप में चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में करीब 14 वर्षों तक रहा। यद्यपि इसकी रचना 'इंडिका' का मूलरूप प्राप्त नहीं है, फिर भी इसके उद्धरण अनेक यूनानी लेखकों के ग्रंथों में मिलते हैं जिनसे भारतीय संस्थाओं, भूगोल, समाज के वर्गीकरण, राजधानी पाटलिपुत्र आदि के संबंध में प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। सीरिया नरेश अन्तियोकस का राजदूत डाइमेकस, जो बिंदुसार के राजदरबार में काफी दिनों तक रहा, ने अपने समय की सभ्यता तथा राजनीति का उल्लेख किया है। इस लेखक की भी मूल पुस्तक अनुपलब्ध है। डायोनिसियस मिस्र नरेश टॉल्मी फिलाडेल्फस के राजदूत के रूप में काफी दिनों तक सम्राट अशोक के राजदरबार में रहा था। अन्य पुस्तकों में अज्ञात लेखक की 'पेरीप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी', लगभग 150 ई. के आसपास का टॉल्मी को 'भूगोल' ('ज्योग्रफिका'), प्लिनी की 'नेचुरल हिस्टोरिका' (ई. की प्रथम सदी) महत्त्वपूर्ण हैं। प्लिनी की 'नेचुरल हिस्टोरिका' से भारतीय पशु, पेड़-पौधों एवं खनिज पदार्थों की जानकारी मिलती है। इसी प्रकार एरेलियन के लेख तथा कर्टियस, जस्टिन और स्ट्रैबो के विवरण भी प्राचीन भारत इतिहास के अध्ययन की सामग्रियाँ प्रदान करते हैं। 'पेरीप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' ग्रंथ में भारतीय बंदरगाहों एवं व्यापारिक वस्तुओं का विवरण मिलता है।

चीनी लेखक

चीनी लेखकों के विवरण से भी भारतीय इतिहास पर प्रचुर प्रभाव पड़ता है। चीन के प्रथम इतिहासकार शुमासीन ने लगभग प्रथम शताब्दी ई.पू. में इतिहास की एक पुस्तक लिखी, जिससे प्राचीन भारत पर बहुत-कुछ प्रकाश पड़ता है। इसके बाद भारत आनेवाले प्राय: सभी चीनी लेखक बौद्ध मतानुयायी थे और वे इस धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही भारत आये थे। चीनी बौद्ध यात्रियों में फाह्यान (399 से 413 ई.), शुंगयुन (518 ई.), ह्वेनसांग (629 से 645 ई.), इत्सिंग (673 से 695 ई.) आदि महत्त्वपूर्ण थे, जिन्होंने भारत की यात्रा की और अपने यात्रा-वृतांत में भारतीय रीति-रिवाजों, राजनैतिक स्थिति और भारतीय समाज के बारे में बहुत कुछ लिखा है। फाह्यान बौद्ध हस्तलिपियों एवं बौद्ध स्मृतियों को खोजने के लिए कठोर यातनाएँ सहता हुआ आया था। उसने गंगावर्ती प्रांतों के शासन-प्रबंध तथा सामयिक अवस्था का पूर्ण विवरण लिपिबद्ध किया है। चीनी यात्रियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ह्वेनसांग को 'प्रिंस ऑफ पिलग्रिम्स' अर्थात् 'यात्रियों का राजकुमार' कहा जाता है। यह कन्नौज नरेश हर्षवर्धन (606-47 ई.) के शासनकाल में भारत आया था। इसने लगभग दस वर्षों तक भारत में भ्रमण किया और छ: वर्षों तक नालंदा विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। इसकी भारत-यात्रा के वृतांत को 'सी-यू-की' के नाम से जाना जाता

है, जिसमें लगभग 138 देशों की यात्राओं का वर्णन है। उसके मित्र ह्वीली ने 'ह्वेनसांग की जीवनी' नामक ग्रंथ लिखा है जिससे हर्षकालीन भारत पर प्रकाश पड़ता है। सातवीं शताब्दी के अंत में इत्सिंग भारत आया था। वह बहुत समय तक नालंदा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में रहा। उसने बौद्ध शिक्षा संस्थाओं और भारतीयों की वेशभूषा, खानपान आदि के विषय में भी लिखा है। इनके अलावा मा-त्वा-लिन व चाऊ-जू-कुआ की रचनाओं से भी भारत के बारे में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। मा-त्वा-लिन ने हर्ष के पूर्वी अभियान एवं चाऊ-जू-कुआ ने चोलकालीन इतिहास पर प्रकाश डाला है।

अरबी लेखक

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज और संस्कृति के विषय में सर्वप्रथम अरब व्यापारियों एवं लेखकों से जानकारी प्राप्त होती है। इन व्यापारियों और लेखकों में अल-बिलादुरी, फरिश्ता, अल्बरूनी, सुलेमान और अलमसूदी महत्त्वपूर्ण हैं जिन्होंने भारत के बारे में लिखा है। फरिश्ता एक प्रसिद्ध इतिहासकार था, जिसने फारसी में इतिहास लिखा है। उसे बीजापुर के सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय का संरक्षण प्राप्त था। महमूद गजनवी के साथ भारत आनेवाले अल्बरूनी (अबूरिहान) ने संस्कृत भाषा सीखकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पूर्णरूप से जानने का प्रयास किया। उसने अपनी पुस्तक 'तहकीक-ए-हिंद' अर्थात् किताबुल-हिंद में भारतीय गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, सृष्टिशास्त्र, ज्योतिष, भूगोल, दर्शन, धार्मिक क्रियाओं, रीति-रिवाजों और सामाजिक विचारधाराओं का प्रशंसनीय वर्णन किया है।

नवीं शताब्दी में भारत आनेवाले अरबी यात्री सुलेमान ने प्रतिहार एवं पाल शासकों के समय की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक दशा का वर्णन किया है। 915-16 ई. में भारत की यात्रा करनेवाले बगदाद के यात्री अलमसूदी से राष्ट्रकूट एवं प्रतिहार शासकों के विषय में जानकारी मिलती है। महान् अरब इतिहासकार और इस्लाम धर्मशास्त्री तबरी उस समय के इस्लाम जगत् के प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्या-केंद्रों में गया था और अनेक प्रसिद्ध विद्वानों से शिक्षा ग्रहण की थी।

इसके अतिरिक्त कुछ फारसी लेखकों के विवरण भी प्राप्त होते हैं जिनसे भारतीय इतिहास के अध्ययन में काफी सहायता मिलती है। इनमें फिरदौसी द्ध940-1020 ई.ऋ की रचना 'शाहनामा', राशिद-अल-दीन हमादानी (1247-1318 ई.) की 'जमी-अल-तवारीख', अली अहमद की 'चचनामा' (फतहनामा), मिन्हाज-उस-सिराज की 'तबकात-ए-नासिरी', जियाउद्दीन बरनी की 'तारीख-ए-फिरोजशाही' एवं अबुल फजल की 'अकबरनामा' आदि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

यूरोपीय यात्रियों में तेरहवीं शताब्दी में वेनिस (इटली) से आये सुप्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलों द्वारा दक्षिण के पांड्य राज्य के विषय में जानकारी मिलती है।

2. पुरातात्त्विक स्रोत

प्राचीन भारत के अध्ययन के लिए पुरातात्त्विक सामग्री का विशेष महत्त्व है। पुरातात्त्विक स्रोत साहित्यिक स्रोतों की अपेक्षा अधिक प्रमाणिक और विश्वसनीय होते हैं क्योंकि इनमें किसी प्रकार के हेर-फेर की संभावना नहीं रहती है। पुरातात्त्विक स्रोतों के अंतर्गत मुख्यतः अभिलेख, सिक्के, स्मारक, भवन, मूर्तियाँ, चित्रकला, उत्खनित अवशेष आदि आते हैं।

अभिलेख

पुरातात्त्विक स्रोतों के अंतर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत अभिलेख हैं। ये अभिलेख अधिकांशतः स्तंभों, शिलाओं, ताम्रपत्रों, मुद्राओं, पात्रों, मूर्तियों आदि पर खुदे हुए मिलते हैं। जिन अभिलेखों पर उनकी तिथि अंकित नहीं है, उनके अक्षरों की बनावट के आधार पर मोटेतौर पर उनका काल निर्धारित

किया जाता है।

भारतीय अभिलेख विज्ञान में उल्लेखनीय प्रगति 1830 के दशक में हुई, जब ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अधिकारी जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का अर्थ निकाला। इन लिपियों का उपयोग आरंभिक अभिलेखों और सिक्कों में किया गया है। प्रिंसेप को पता चला कि अधिकांश अभिलेखों और सिक्कों पर 'पियदस्सी' नामक किसी राजा का नाम लिखा है। कुछ अभिलेखों पर राजा का नाम 'अशोक' भी लिखा मिला। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार अशोक सर्वाधिक प्रसिद्ध शासकों में से एक था। इस शोध से आरंभिक भारत के राजनीतिक इतिहास के अध्ययन को नई दिशा मिली। भारतीय और यूरोपीय विद्वानों ने उपमहाद्वीप पर शासन करनेवाले प्रमुख राजवंशों की वंशावलियों की पुनर्रचना के लिए विभिन्न भाषाओं में लिखे अभिलेखों और ग्रंथों का उपयोग किया। परिणामस्वरूप बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों तक उपमहाद्वीप के राजनीतिक इतिहास का एक सामान्य चित्र तैयार हो गया।

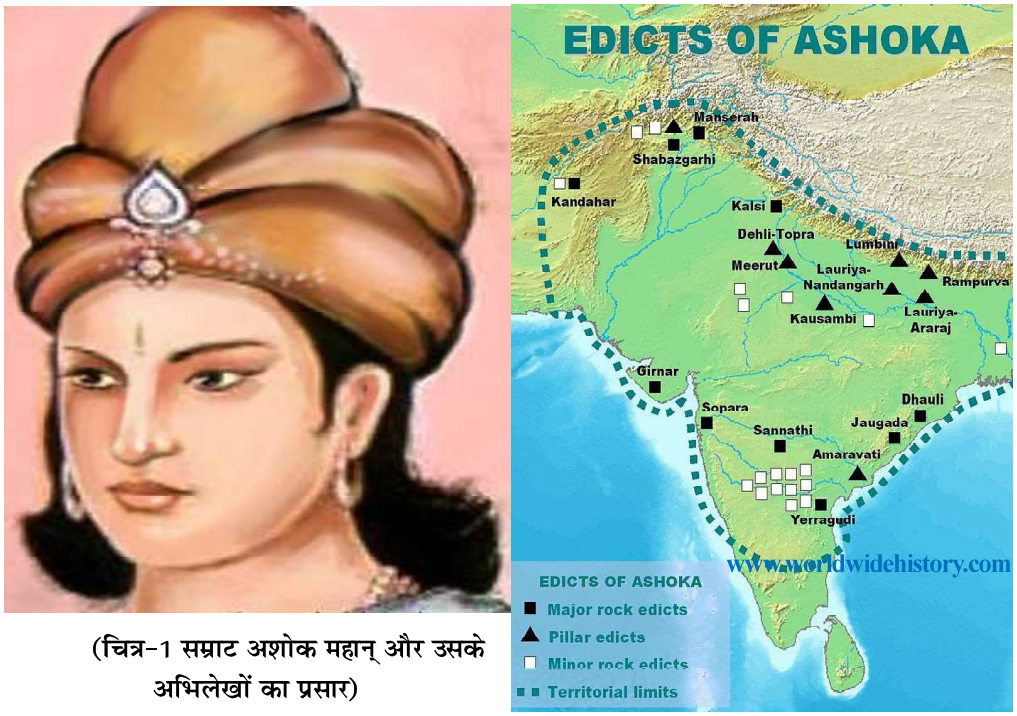

(चित्र-1 सम्राट अशोक महान् और उसके अभिलेखों का प्रसार)

अभी तक विभिन्न कालों और राजाओं के हजारों अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं जिनमें भारत का प्राचीनतम् प्राप्त अभिलेख प्राग्मौर्ययुगीन पिपरहवा कलश लेख (सिद्धार्थनगर) एवं बंगाल से प्राप्त महास्थान अभिलेख महत्त्वपूर्ण हैं। अपने यथार्थ रूप में अभिलेख सर्वप्रथम अशोक के शासनकाल के ही मिलते हैं। मौर्य सम्राट अशोक के इतिहास की संपूर्ण जानकारी उसके अभिलेखों से मिलती है। माना जाता है कि अशोक को अभिलेखों की प्रेरणा ईरान के शासक डेरियस से मिली थी।

अशोक के अभिलेखों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- शिलालेख, स्तंभलेख और गुहालेख। शिलालेखों और स्तंभ लेखों को दो उपश्रेणियों में रखा जाता है। चौदह शिलालेख सिलसिलेवार हैं, जिनको 'चतुर्दश शिलालेख' कहा जाता है। ये शिलालेख शाहबाजगढ़ी, मानसेहरा, कालसी, गिरनार, सोपारा, धौली और जौगढ़ में मिले हैं। कुछ फुटकर शिलालेख असंबद्ध रूप में हैं और संक्षिप्त हैं। शायद इसीलिए उन्हें 'लघु शिलालेख' कहा जाता है। इस प्रकार के शिलालेख रूपनाथ,

सासाराम, बैराट, मास्की, सिद्धपुर, जटिंगरामेश्वर और ब्रह्मगिरि में पाये गये हैं। एक अभिलेख, जो हैदराबाद में मास्की नामक स्थान पर स्थित है, में अशोक के नाम का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त गुजर्रा तथा पानगुड्इया (मध्य प्रदेश) से प्राप्त लेखों में भी अशोक का नाम मिलता है। अन्य अभिलेखों में उसको देवताओं का प्रिय 'प्रियदर्शी' राजा कहा गया है। अशोक के अधिकांश अभिलेख मुख्यत: ब्राह्मी में हैं जिससे भारत की हिंदी, पंजाबी, बंगाली, गुजराती और मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड़ आदि भाषाओं की लिपियों का विकास हुआ। पाकिस्तान और अफगानिस्तान में पाये गये अशोक के कुछ अभिलेख खरोष्ठी तथा आरमेइक लिपि में हैं। 'खरोष्ठी लिपि' फारसी की भाँति दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी।

राजकीय अभिलेख और निजी अभिलेख

अशोक के बाद अभिलेखों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है- राजकीय अभिलेख और निजी अभिलेख। राजकीय अभिलेख या तो राजकवियों द्वारा लिखी गई प्रशस्तियाँ हैं या भूमि-अनुदान-पत्र। प्रशस्तियों का प्रसिद्ध उदाहरण हरिषेण द्वारा लिखित समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति अभिलेख (चौथी शताब्दी) है जो अशोक-स्तंभ पर उत्कीर्ण है। इस प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजयों और उसकी नीतियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इसी प्रकार राजा भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में उसकी उपलब्धियों का वर्णन है। इसके अलावा कलिंगराज खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख (प्रथम शताब्दी ई.पू.), शक क्षत्राप रुद्रदामन् प्रथम का जूनागढ़ अभिलेख (150 ई.), गौतमी बलश्री का नासिक अभिलेख, स्कंदगुप्त का भितरी तथा जूनागढ़ लेख, मालवा नरेश यशोधर्मन का मंदसौर अभिलेख, चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय कोऐहोल अभिलेख (634 ई.), बंगाल के शासक विजयसेन का देवपाड़ा अभिलेख भी महत्त्वपूर्ण हैं जिनसे प्राचीन भारतीय इतिहास कोढाँचा खड़ा करने में विशेष सहायता मिलती है।

भूमि-अनुदान-पत्र अधिकतर ताँबे की चादरों पर उत्कीर्ण हैं। इन अनुदान-पत्रों में भूमिखंडों की सीमाओं के उल्लेख के साथ-साथ उस अवसर का भी वर्णन मिलता है जब वह भूमिखंड दान में दिया गया। इसमें शासकों की उपलब्धियों का भी वर्णन मिलता है। पूर्वमध्यकाल के भूमि-अनुदान-पत्र बड़ी संख्या में मिले हैं, जिससे लगता है कि इस काल (600-1200 ई.) में सामंती अर्थव्यवस्था विद्यमान थी।

निजी अभिलेख प्राय: मंदिरों में या मूर्तियों पर उत्कीर्ण हैं। इन पर खुदी हुई तिथियों से मंदिर-निर्माण या मूर्ति-प्रतिष्ठापन के समय का ज्ञान होता है। इसके अलावा यवन राजदूत हेलियोडोरस का बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त गरुड़ स्तंभ लेख, वाराह प्रतिमा पर एरण (मध्य प्रदेश) से प्राप्त हूण राजा तोरमाण के लेख जैसे अभिलेख भी इतिहास-निर्माण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन अभिलेखों से मूर्तिकला और वास्तुकला के विकास पर प्रकाश पड़ता है और तत्कालीन धार्मिक जीवन का ज्ञान होता है।

प्राचीन भारत पर प्रकाश डालनेवाले अभिलेख मुख्यतया पालि, प्राकृत और संस्कृत में मिलते हैं। गुप्तकाल के पहले के अधिकतर अभिलेख प्राकृत भाषा में हैं और उनमें ब्राह्मणेतर धार्मिक-संप्रदायों- जैन और बौद्ध धर्म का उल्लेख है। गुप्त एवं गुप्तोत्तरकाल में अधिकतर अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं और उनमें विशेष रूप से ब्राह्मण धर्म का वर्णन है। प्राचीन भारतीय इतिहास, भूगोल आदि की प्रमाणिक जानकारी के लिए अभिलेख अमूल्य निधि हैं।

इन अभिलेखों के द्वारा तत्त्कालीन राजाओं की वंशावलियों और विजयों का ज्ञान होता है। रुद्रदामन् के गिरनार-अभिलेख में उसके साथ उसके दादा चष्टन् तथा पिता जयदामन् के नामों की भी जानकारी मिलती है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में उसके विजय-अभियान का वर्णन है। यौधेय, कुणिंद, आर्जुनायन

तथा मालव संघ के शासकों के सिक्कों पर 'गण' या 'संघ' शब्द स्पष्ट रूप से खुदा है, जिससे स्पष्ट है कि उस समय गणराज्यों का अस्तित्व बना हुआ था। मौर्य तथा गुप्त-सम्राटों के अभिलेखों से राजतंत्रा प्रणाली की शासन पद्धति के संबंध में ज्ञात होता है और पता चलता है कि साम्राज्य कई प्रांतों में बँटा होता था, जिसको 'भुक्ति' कहते थे।

अभिलेखों में प्रसंगत: सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। अशोक के अभिलेखों में शूद्र के प्रति उचित व्यवहार का निर्देश दिया गया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में कायस्थ, चांडाल आदि जातियों का उल्लेख मिलता है। मनोरंजन के साधनों में मृगया, संगीत, द्यूतक्रीड़ा का उल्लेख है, कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि का भी प्रसंग है। कुषाण तथा शक शासकों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उन्होंने हिंदू धर्म, संस्कृति और भाषा से प्रभावित होकर हिंदू नामों और रीति-रिवाजों को स्वीकार कर लिया था।

दानपत्रों के विवरणों से राज्य की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। नालंदा-ताम्रपत्र के 'सम्यग् बहुधृत बहुदधिभिर्व्यन्जनैर्युक्तमन्नम्' से भोजन के उच्चस्तर का पता चलता है। व्यापार क्षेत्र में निगमों तथा श्रेणियों का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। कुमारगुप्त के मंदसोर अभिलेख में पट्टवाय श्रेणी द्वारा सूर्यमंदिर के निर्माण तथा पुनरुद्धार का वर्णन है। उनके द्वारा बुने रेशम विश्वविख्यात थे। निगमों द्वारा बैंक का कार्य करने का भी उल्लेख मिलता है।

अभिलेखों से विभिन्न कालों की धार्मिक स्थिति का विवरण भी मिलता है। अशोक के अभिलेखों से पता चलता है कि उसके काल में बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार था तथा वह स्वयं इसके सिद्धांतों से प्रभावित था। उदयगिरि के गुहालेखों में उड़ीसा में जैनमत के प्रचार का ज्ञान होता है। गुप्तकालीन अभिलेखों से पता चलता है कि गुप्त सम्राट वैष्णव धर्म के अनुयायी थे तथा उस काल में भागवत धर्म की प्रधानता थी। यह भी पता चलता है कि विभिन्न स्थानों पर सूर्य, शिव, शक्ति, गणेश आदि की पूजा होती थी। अभिलेखों के अध्ययन से धार्मिक सहिष्णुता और सांप्रदायिक सद्भाव का भी परिचय मिलता है। अशोक ने अपने बारहवें शिलालेख में आदेश दिया है कि सब मनुष्य एक दूसरे के धर्म को सुनें और सेवन करें। कभी-कभी अभिलेखों में व्यापारिक विज्ञापन भी मिलता है। कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मन्कालीन मालवा के अभिलेख में वहाँ के तंतुवायों (जुलाहों) के कपड़ों का विज्ञापन इस प्रकार दिया हुआ है-

'तारुण्य और सौंदर्य से युक्त, सुवर्णहार, ताँबूल, पुष्प आदि से सुशोभित स्त्री तब तक अपने प्रियतम् से मिलने नहीं जाती, जब तक कि वह दशपुर के बने पट्टमय (रेशम) वस्त्रों के जोड़े को नहीं धारण करती। इस प्रकार स्पर्श करने में कोमल, विभिन्न रंगों से चित्रित, नयनाभिराम रेशमी वस्त्रों से संपूर्ण पृथ्वीतल अलंकृत है।'

अभिलेखों का विशेष साहित्यिक महत्त्व भी है। इनसे संस्कृत और प्राकृत भाषाओं की गद्य, पद्य आदि काव्य-विधाओं के विकास पर प्रकाश पड़ता है। रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख (150 ई.) संस्कृत गद्य के अत्युत्तम उदाहरणों में से एक है। इसमें अलंकार, रीति आदि गद्य के सभी सौंदर्य-विधायक गुणों का वर्णन है। समुद्रगुप्त की हरिषेण विरचित प्रयाग-प्रशस्ति गद्य-पद्य मिश्रित चंपू काव्य शैली का एक अनुपम उदाहरण है। मंदसौर का पट्टवाय श्रेणी-अभिलेख, यशोधर्मनकालीन कूपशिलालेख, पुलकेशिन द्वितीय कोऐहोल शिलाभिलेख आदि अनेक अभिलेख पद्य-काव्य के उत्तम उदाहरण हैं। इन अभिलेखों से हरिषेण, वत्सभट्टि, रविकीर्ति आदि ऐसे अनेक कवियों का नाम प्रकाश में आया जिनका नाम संस्कृत साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। चहमानवंशीय विग्रहराज के काल का सोमदेवरचित 'ललितविग्रह' और विग्रहराजकृत 'हरकेलि' नाटक प्रस्तरशिला पर अंकित नाट्य-साहित्य के सुंदर उदाहरण हैं।

विदेशों से प्राप्त कुछ अभिलेखों से भी भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। मध्य एशिया के बोगजकोई नामक स्थान से करीब ई.पू. 1400 कोएक संधिपत्र पाया गया है जिसमें वैदिक देवताओं- इंद्र, मित्र, वरुण व नासत्य का उल्लेख है। इससे लगता है कि वैदिक आर्यों के वंशज एशिया माइनर में भी रहते थे। इसी प्रकार मिस्र में तेलूअल-अमनों में मिट्टी की कुछ तख्तियाँ मिली हैं जिनमें बेबीलोनिया के कुछ ऐसे शासकों के नाम मिलते हैं जो ईरान और भारत के आर्य शासकों के नामों जैसे हैं। पर्सीपोलस और बेहिस्तून अभिलेखों से ज्ञात होता है कि दारा प्रथम ने सिंधु नदी की घाटी पर अधिकार कर लिया था। इसी अभिलेख में पहली बार 'हिद' शब्द का उल्लेख मिलता है।

अभिलेखों से प्राप्त सूचनाओं की भी एक सीमा होती है। अक्षरों के नष्ट हो जाने या उनके हल्के हो जाने के कारण उन्हें पढ़ पाना मुश्किल होता है। इसके अलावा अभिलेखों के शब्दों के वास्तविक अर्थ का पूर्ण ज्ञान हो पाना सरल नहीं होता। भारतीय अभिलेखों का एक मुख्य दोष उनका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी है। फिर भी, अभिलेखों में पाठ-भेद का सर्वथा अभाव है और प्रक्षेप की संभावना शून्य के बराबर होती है। वस्तुतः अभिलेखों ने इतिहास-लेखन को एक नया आयाम दिया है जिसके कारण प्राचीन भारत के इतिहास-निर्माण में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मुद्राएँ

भारतीय इतिहास अध्ययन में मुद्राओं का महत्त्व कम नहीं है। भारत के प्राचीनतम् सिक्कों पर अनेक प्रकार के प्रतीक, जैसे- पर्वत, वृक्ष, पक्षी, मानव, पुष्प, ज्यामितीय आकृति आदि अंकित रहते थे। इन्हें 'आहत मुद्रा' (पंचमार्क क्वायंस) कहा जाता था। संभवतः इन सिक्कों को राजाओं के साथ व्यापारियों, धनपतियों और नागरिकों ने जारी किया था। सर्वाधिक आहत मुद्राएँ उत्तर मौर्यकाल में मिलती हैं जो प्रधानतः सीसे, पोटीन, ताँबें, काँसे, चाँदी और सोने की होती हैं। यूनानी शासकों की मुद्राओं पर लेख एवं तिथियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। शासकों की प्रतिमा और नाम के साथ सबसे पहले सिक्के हिंद-यूनानी शासकों ने जारी किये जो प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास लिखने में विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं। बाद में शकों, कुषाणों और भारतीय राजाओं ने भी यूनानियों के अनुरूप सिक्के चलाये।

www.historyguruji.com

(चित्र -2 प्राचीन भारत की आहत मुद्राएँ)

सोने के सिक्के सबसे पहले प्रथम शताब्दी ई. में कुषाण राजाओं ने जारी किये थे। इनके आकार और वजन तत्कालीन रोमन सम्राटों तथा ईरान के पार्थियन शासकों द्वारा जारी सिक्कों के समान थे। उत्तर और मध्य भारत के कई पुरास्थलों से ऐसे सिक्के मिले हैं। सोने के सिक्कों के व्यापक प्रयोग से संकेत मिलता है कि बहुमूल्य वस्तुओं और भारी मात्रा में वस्तुओं का विनिमय किया जाता था। कुषाणों के समय में सर्वाधिक शुद्ध सुवर्ण मुद्राएँ प्रचलन में थीं, पर सर्वाधिक सुवर्ण मुद्राएँ गुप्तकाल में जारी की गईं। कनिष्क की मुद्राओं से यह पता चलता है कि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। सातवाहन नरेश सातकर्णि की एक मुद्रा पर जलपोत का चित्र उत्कीर्ण है, जिससे अनुमान किया जाता है कि उसने समुद्र क्षेत्र की

विजय की थी। समुद्रगुप्त की कुछ मुद्राओं पर वीणा बजाते हुए दिखाया गया है। चंद्रगुप्त द्वितीय की व्याघ्रशैली की मुद्राएँ पश्चिमी भारत उसके शक-विजय का सूचक हैं। प्राचीन भारत में निगमों और श्रेणियों की मुद्राएँ भी अभिलेखांकित होती थीं, जिनसे उनके क्रिया-कलापों पर प्रकाश पड़ता है। इसके अलावा, दक्षिण भारत के अनेक पुरास्थलों से बड़ी संख्या में रोमन सिक्के मिले हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि व्यापारिक-तंत्र राजनीतिक सीमाओं से बँधा नहीं था क्योंकि दक्षिण भारत रोमन साम्राज्य के अंतर्गत न होते हुए भी व्यापारिक दृष्टि से रोमन साम्राज्य से जुड़ा हुआ था। पंजाब और हरियाणा के क्षेत्रों में यौधेय (प्रथम शताब्दी ई.) जैसे गणराज्यों ने भी सिक्के जारी किये थे। यौधेय शासकों द्वारा जारी ताँबे के हजारों सिक्के मिले हैं, जिनसे यौधेयों की व्यापार में रुचि और सहभागिता परिलक्षित होती है।

छठी शताब्दी ई. से सोने के सिक्के मिलने कम हो गये। इस आधार पर कुछ इतिहासकारों का मानना है कि रोमन साम्राज्य के पतन के बाद दूरवर्ती व्यापार में गिरावट आई। इससे उन राज्यों, समुदायों और क्षेत्रों की संपन्नता पर प्रभाव पड़ा, जिन्हें इस दूरवर्ती व्यापार से लाभ मिलता था।

स्मारक एवं कलात्मक अवशेष

इतिहास-निर्माण में भारतीय स्थापत्यकारों, वास्तुकारों और चित्रकारों ने अपने हथियार, छेनी, कन्नी और तूलिका के द्वारा विशेष योगदान दिया है। इनके द्वारा निर्मित प्राचीन इमारतें, मंदिरों, मूर्तियों के अवशेषों से भारत की प्राचीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। खुदाई में मिले महत्त्वपूर्ण अवशेषों में हड़प्पा सभ्यता, पाटलिपुत्र की खुदाई में चंद्रगुप्त मौर्य के समय लकड़ी के बने राजप्रसाद के ध्वंसावशेष, कोशांबी की खुदाई से महाराज उदयन के राजप्रसाद एवं घोषिताराम बिहार के अवशेष, अतरंजीखेड़ा में खुदाई से लोहे के प्रयोग के साक्ष्य, पांडिचेरी के अरिकामेडु से खुदाई में प्राप्त रोमन मुद्राओं, बर्तनों आदि के अवशेषों से तत्कालीन इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी मिलती है। मंदिर-निर्माण की प्रचलित शैलियों में 'नागर शैली' उत्तर भारत में प्रचलित थी, जबकि 'द्रविड़ शैली' दक्षिण भारत में प्रचलित थी। दक्षिणापथ में निर्मित वे मंदिर जिसमें नागर एवं द्रविड़ दोनों शैलियों का समावेश है, उसे 'बेसर शैली' कहा गया है।

इसके अलावा एशिया के दक्षिणी भाग में स्थित प्राचीन भारतीय उपनिवेशों से पाये गये स्मारकों से भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। जावा का स्मारक बोरोबुदुर और कंबोडिया का अंकोरवाट मंदिर इस दृष्टि से पर्याप्त उपयोगी हैं। मलाया, बाली और बोर्नियो से मिलनेवाले कई छोटे स्तूप और स्मारक बृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रसार के सूचक हैं।

प्राचीन काल में मूर्तियों का निर्माण कुषाण काल से आरंभ होता है। कुषाणों, गुप्त शासकों एवं उत्तर गुप्तकाल में निर्मित मूर्तियों के विकास में जन-सामान्य की धार्मिक भावनाओं का विशेष योगदान रहा है। कुषाणकालीन मूर्तियों एवं गुप्तकालीन मूर्तियों में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ कुषाणकालीन मूर्तियों पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट है, वहीं गुप्तकालीन मूर्तियाँ स्वाभाविकता से ओत-प्रोत हैं। भरहुत, बोधगया, साँची और अमरावती में मिली मूर्तियाँ जनसामान्य के जीवन की सजीव झाँकी प्रस्तुत करती हैं।

चित्रकला से भी प्राचीन भारत के जन-जीवन की जानकारी मिलती है। अजन्ता के चित्रों में मानवीय भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति है। 'माता और शिशु' या 'मरणशील राजकुमारी' जैसे चित्रों से बौद्ध चित्रकला की कलात्मक पराकाष्ठा का प्रमाण मिलता है। एलोरा गुफाओं के चित्र एवं बाघ की गुफाएँ भी चित्रकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

(चित्र-3 अजंता की मरणशील राजकुमारी का चित्र)

उत्खनित सामग्री

बस्तियों के स्थलों के उत्खनन से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे प्रागैतिहास और आद्य इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। आरंभिक मानव-जीवन के विकास के विविध पक्षों का ज्ञान उनकी बस्तियों से प्राप्त पत्थर और हड्डी के औजारों, मिट्टी के बर्तनों, मकानों के खंडहरों से होता है। सोहन घाटी (पाकिस्तान) में पुरापाषाण युग के मिले खुरदुरे पत्थरों के औजारों से अनुमान लगाया गया है कि भारत में आदिमानव ईसा से 4 लाख से 2 लाख वर्ष पूर्व रहता था। 10,000 से 6,000 वर्ष पूर्व के काल में मानव कृषि, पशुपालन और मिट्टी के बर्तन बनाना सीख गया था। कृषि-संबंधी प्रथम साक्ष्य साँभर (राजस्थान) से पौधा बोने का मिला है, जो ई.पू. 7000 का बताया जाता है। पुरातात्त्विक अवशेषों तथा उत्खनन में प्राप्त मृद्भांडों से संस्कृतियों के विकास-क्रम पर प्रकाश पड़ता है। अवशेषों में प्राप्त मुहरें भी प्राचीन भारत के इतिहास-लेखन में बहुत उपयोगी हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त लगभग पाँच सौ मुहरों से तत्कालीन धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। आज पुरातत्त्ववेत्ता वैदिक साहित्य, महाभारत और रामायण में उल्लिखित स्थानों का उत्खनन कर तत्कालीन भौतिक संस्कृति का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस प्रकार एक कुशल इतिहासकार सम-सामयिक साहित्यिक और पुरातात्त्विक सामग्री का समन्वित उपयोग कर पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अतीत का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।